# तज्जलान्-एक चिन्तन

**डॉ० कमला पाण्डेय**

सृष्टि के स्वर्णिम प्रभात में ही विवेकशील मानव की चेतना में दो जिज्ञासाओं का सहज स्फुरण हुआ "किमिदम्" और "कोऽहम्"? इन दोनों जिज्ञासाओं ने एक साथ दो चिन्तन धाराओं को प्रेरित किया, जिनमें एक इस परिदृश्यमान बाह्य जगत् के मूल उत्स की खोज से सम्बद्ध थी तो दूसरी चिन्तनकर्ता के स्वस्वरूपप्रतिष्ठा की अन्वीक्षा से।[1] तत्वान्वेषण की यह प्रक्रिया वैदिक मनीषा में मुकुलित हुई और क्रमशः पल्लवित पुष्पित हुई औपनिषद् तत्वबोध के रूप में उद्भासित हुई। इसी सुदीर्घ चिन्तन प्रवाह में अनुभवकर्ता को उसका अन्तः स्थित सत्य आत्मा के रूप में प्राप्त हुआ और बाह्य जगत् के वस्तुनिष्ठ विश्लेषण से उस चरम तत्व की परिचिति ब्रह्मा के रूप में हुई।

मूल प्रश्न थे 'किमिदम्'? और 'कोऽहम्'?
उत्तर मिला 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' और 'तत्वमसि'।

इन दोनों महावाक्यों की प्रस्तुति का श्रेय मिला छान्दोग्य श्रुति को, जिनमें एक ओर जगत् और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन है तो दूसरी ओर जीव और ब्रह्म की अभिन्नता का प्रकाश है।

'किमिदं' से 'कोऽहं' तक की आकुलता के उपशम की खोज में प्रवृत्त छान्दोग्यश्रुति उस चिन्मयतत्व की उपासना का उपक्रम इस प्रकार कर रही है

"सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत"[2]
यह सम्पूर्ण जगत् निश्चय ही ब्रह्म है, उसकी शान्त होकर उपासना करनी चाहिए।

इस उक्ति की उपपत्ति में श्रुति के गम्भीर अर्थ के प्रतिपादक 'तज्जलान्' पद की व्याख्या भगवान् भाष्यकार इस प्रकार करते हैं

"तस्माद् ब्रह्मणो जातं तेजोऽबन्नादि क्रमेण सर्वम् अतः तज्जम्, तथा तेनैव जननक्रमेण प्रतिलोमतया तस्मिन्नेव ब्रह्मणि लीयते तदात्मतया श्लिष्यते इति तल्लम्, तथा तस्मिन्नेव स्थितिकालेऽनिति प्राणिति चेष्टते इति।"[3]

अर्थात् तेज, अप् और अन्नादि क्रम से सारा जगत् उस ब्रह्म से उत्पन्न हुआ है इसलिए तज्ज है तथा उसी जनन क्रम के विपरीत क्रम से उस ब्रह्म में लीन होता है अर्थात् तादात्म्य रूप से उसमें मिल जाता है इसलिये तल्ल है और अपनी स्थिति के समय उसी मे अननप्राणन अर्थात् चेष्टा करता है, इसलिए तदन है। इस प्रकार ब्रह्मात्मरूप से वह तीनों कालों में समान रहता है।

'तज्जलान्' की व्याख्या में सर्वप्रथम भाष्यकार ने 'तस्माज्जायते' कहा है। इससे ब्रह्म में जगत् की कारणता सिद्ध होती है। किसी भी कार्य के दो कारण होते हैं—उपादान कारण और निमित्त कारण। उपादान कारण कार्य के रूप में परिणत होता है और निमित्त कारण का उपयोग करते हुए कार्य को उत्पन्न करता है। जगत् रूप कार्य के प्रति ब्रह्म को जगत् का उपादान कारण और निमित्त कारण दोनों माना गया है। जिस प्रकार 'यतो वा इमानि भूतानि

जायन्ते' इस तैत्तिरीयश्रुति में यत्शब्द की पञ्चमी विभक्ति जगत् की उपादानकारणता सिद्ध कर रही है, उसी प्रकार 'तज्जलान्' में तस्मात्पद ब्रह्म की उपादानकारणता सिद्ध कर रहा है। इसी प्रकार 'सोऽकामयत' (तै0 2/6/1) एवं 'तदैक्षत बहु स्यां प्रजायेय' (छा0 6/2/3) दोनों श्रुति वाक्यों से स्पष्ट है कि आत्मा जगत् का कर्ता एवं प्रकृति दोनों है।

ब्रह्म की उभयकारणता को सिद्ध करने के लिए दार्शनिकों ने मकड़ी का दृष्टान्त प्रस्तुत किया है।[4] जिस प्रकार मकड़ी अपने जाले की निर्मात्री होने से उसकी निमित्त कारण है और अपने शरीर से ही निकाले गये पदार्थों से जाले को बनाने के कारण उसकी उपादान कारण है उसी प्रकार ब्रह्म से ही सम्पूर्ण सृष्टि होती है अत: वह जगत् का उपादान कारण भी है और उस सृष्टि का कर्ता होने के कारण निमित्त कारण भी। ब्रह्म की विशेषता यह है कि वह जगत्रूप में परिणत नहीं होता अपितु जगत् ब्रह्म का विवर्त हो जाता है। जैसे दही बनने की प्रक्रिया में दूध का स्वरूप परिवर्तित हो जाता है उस प्रकार जगत् की सृष्टि से ब्रह्म का स्वरूप नहीं बदलता है। अत: जगत् ब्रह्म का परिणाम नहीं है। अपितु जिस प्रकार रस्सी को तत्वत: सांप नहीं बनना पड़ता अध्यास (भ्रम) के कारण रस्सी का ज्ञान सांप के रूप में होता है[5] उसी प्रकार जगत् को वर्तमानता से ब्रह्म के स्वरूप में कोई अन्तर नहीं आता। जगत् का विवर्त होना ही ब्रह्म की उपादानकारणता है। अनिर्वचनीय माया से संवलित होकर ही वह सृष्टि रचना करता है।

'तस्माज्जातम्' को स्पष्ट करने के लिये छान्दोग्य श्रुति ने जगत् की उत्पत्ति का क्रम इस प्रकार प्रतिपादित किया है—

"सदेव सौम्य! इदमग्र आसीत्, एकमेवाद्वितीयम्"[6]
हे सौम्य! आरम्भ में यह एक ही सत् था।

जब वह सत् अर्थात् ब्रह्म इच्छाशक्ति अर्थात् माया से संसृष्ट हुआ तो उस मायोपाधिक चैतन्य अथवा ईश्वर में 'बहुस्यां प्रजायेय' मैं बहुत हो जाऊं, अनेक प्रकार से उत्पन्न होऊं यह संकल्प अथवा ईक्षण रूपी वृत्ति का उदय हुआ। उससे सर्वप्रथम तेज उत्पन्न हुआ, फिर तेज से जल, जल से अन्न, अन्न से अण्डज, स्वेदज, उज्जि आदि सृष्टि उत्पन्न हुई।[7]

तैत्तिरीय श्रुति में आत्मतत्व से आकाश, आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल और जल से पृथ्वी ऐसा क्रम दिखाया है।[8] अतएव प्रकृत क्रम से आपातत: विरोध प्रतीत होता है। इस विरोध का परिहार भाष्यकार ने इस प्रकार किया है —

नैष दोष: । आकाशवायुसर्गानन्तरं तत्तेजोऽसृजतेति कल्पनोपपत्ते:।[9]

यहां पर भी यही अभिप्राय है कि उस सत् तत्व ने पहले आकाश की सृष्टि की आकाश से वायु उत्पन्न हुआ तत्पश्चात् तेजस् आदि का क्रमिक विकास हुआ।

सृष्टि क्रम के ठीक विपरीत क्रम से तत्तत् तत्व अपने अपने कारणों में लय होते हैं और केवल वही सत् तत्व विद्यमान रहता है। वेदान्त में प्रलय को चार प्रकार का बताया गया है नित्य, प्राकृतिक, नैमित्तिक और आत्यन्तिक।[10] सुषुप्ति को नित्य प्रलय माना गया है। प्राकृत प्रलय में सम्पूर्ण कार्यों का नाश हो जाता है। प्रजापति का दिवसावसान नैमित्तिक प्रलय है। इस प्रलय में भूरादि तीन लोकों का नाश होता है और आत्यन्तिक प्रलय ब्रह्म साक्षात्कार से होता है। परमात्मा में सम्पूर्ण अविद्या और उसके कार्यों का लय तुरीय प्रलय है।[11] उस परब्रह्म के

अपरोक्षानुभव के उपरान्त पृथ्वी जल में, जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाश में, आकाश जीवाहंकार में, जीवाहंकार हिरण्यगर्भाहंकार में, हिरण्यगर्भाहंकार अविद्या में लीन होते हैं और अविद्या का परमात्म तत्व में लय हो जाता है।[12] तत्वज्ञानी साधक की वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण तेज में, तेज उस परम देवता अर्थात् सत् में लीन हो जाता है—

"पुरुषस्य प्रयतो वाङ् मनसि सम्पद्यते। मन: प्राणे, प्राणस्तेजसि, तेज: परस्यां देवतायाम्"[13]

इस प्रकार उस अद्वितीय सत्तत्व से जगत्प्रपञ्च की जिस क्रम से उत्पत्ति होती है उसके विपरीत क्रम से अपने अपने कारणों में लय होते हुए अन्त में सम्पूर्ण जगत् उसी सत् तत्व में लीन हो जाता है।

उत्पन्न होने के बाद सृष्टि को स्थिति काल में वही सत् उन उन कार्यों में जीवात्म रूप से अनुप्रवेश कर नाम और रूप की अभिव्यक्ति करता है—

अनेन जीवेन आत्मना अनुप्रविश्य नामरूपे व्याकरवाणि।[14]

उसका यह अनुप्रवेश ही जड़ जगत् में प्राण का सञ्चार करता है, चेतनता का आधान करता है यही ब्रह्म का 'तदन' है।

पुन: इसी विषय को स्पष्ट करते हुए श्रुति कहती है जैसे मिट्टी के पिण्ड से विभिन्न मिट्टी के पात्र बनते हैं, मिट्टी रूप में ही स्थित रहते हैं, फिर भी नाम व आकृति में रहने पर उनका तत्व मिट्टी ही होता है और मिट्टी का ज्ञान हो जाने पर विविध नामरूपों के तत्व ज्ञान भी हो जाता है ऐसे ही समस्त जगत् ब्रह्म से ही उद्भूत है, ब्रह्म में ही स्थित है और ब्रह्म में ही लीन हो जाता है—

"यथा सौम्य। एकेन मृत्पिण्डेन सर्व मृण्मयं विज्ञातं स्याद्वाचारम्भणं विकारो नामधेयं मृत्तिकेत्येव सत्यम्"।[15]

इस प्रकार छान्दोग्य श्रुति में 'तज्जलान्' इस छोटे से पद में जगत् की सृष्टि, लय और स्थिति को बड़ी सुन्दरता से गुम्फित किया गया है। जिस औपनिषद् सिद्धान्त को तैत्तिरीय श्रुति ने 'यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते, येन जातानि जीवन्ति यत्प्रयन्त्यभिसंनिविशन्ति'[16] इन तीन वाक्यों में समझाया है उसी रहस्य को 'तज्जलान्' कहकर ऋषि ने गागर में सागर भर दिया है।

ऐसे महिमामय ब्रह्म की उपासना करने पर 'कोऽहम्' की जिज्ञासा का उपशम सम्भव है। अत: मातृवत् कल्याणी श्रुति आरव्यायिका के व्याज से आरुणि और श्वेतकेतु का संवाद प्रस्तुत कर आत्मा तक पहुंचने का उपाय इस प्रकार समझा रही है—

"हे सौम्य! तू अन्न रूप अंकुर (शुंग) के द्वारा जल रूप मूल को खोज जल रूप अंकुर के द्वारा तेजो रूप मूल को खोज, तेजो रूप अंकुर के द्वारा सद् रूप मूल का अनुसन्धान कर। हे सौम्य! इस प्रकार यह सारी प्रजा सन्मूलक है अर्थात् सत् से उत्पन्न हुई है, सत् ही इसका आश्रय है और सत् ही प्रतिष्ठा है—

".... सन्मूला: सौम्य! इमा: प्रजा: सदायतना: सत्प्रतिष्ठा:"।[17]

इस प्रकार अपने पुत्र श्वेतकेतु को आत्म तत्व का साक्षात्कार कराने के लिये उद्दालक आरुणि ने कहा कि

यह सत् ही सत्य है। इस सत्संज्ञक आत्मा से सारा जगत् आत्मवान् है। वह आत्मा ही जगत् का प्रत्यक् स्वरूप अर्थात् याथात्म्य है। हे श्वेतकेतो वही तू है—

"ऐतदात्म्यमिदं सर्वं तत्सत्यं स आत्मा तत्वमसि श्वेतकेतो इति।"[18]

मधु, नदी, वृक्ष, बटबीज, नमक, बंधी आंखों वाले पुरुष, मुमूर्षु, मिथ्याज्ञानी और यथार्थज्ञानी के दृष्टान्त द्वारा आरुणि ने श्वेतकेतु को नौ बार तत्वमसि का उपदेश दिया।

'तत्वमसि' महावाक्य के द्वारा आचार्य ने अधिकारी शिष्य को प्रत्यक्षात्मक बोध कराया है।[19]

मिथ्याज्ञान प्रत्यक्षात्मक है उसका निराकरण प्रत्यक्षात्मक ज्ञान ही कर सकता है। शब्दबोध से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति नहीं हो सकती। जिस प्रकार 'दशमस्त्वमसि' वाक्य द्वारा दशम को प्रत्यक्षात्मक बोध होता है कि 'वह दसवां मैं ही हूं' उसी प्रकार 'तत्वमसि' महावाक्य के द्वारा भी जिज्ञासु अधिकारी को 'अहं ब्रह्मास्मि' की साक्षात्कारात्मक प्रतीति होती है। किं बहुना वहां तो जीव और ब्रह्म का भेद मूलत: समाप्त होकर "जानत तुमहिं तुमहिं होइ जाई"[20] की स्थिति हो जाती है।

निष्कर्ष यह है कि सम्पूर्ण जगत्प्रपञ्च की उत्पत्ति, स्थिति और लय परात्पर ब्रह्म में ही उपपन्न है और उस परम तत्व की अधिगति भारतीय दर्शन एवम् अध्यात्म का चिरन्तर लक्ष्य है।

## सन्दर्भ-सूची


1- अद्वैत वेदान्त में तत्व और ज्ञान—डा0 ऊर्मिला शर्मा
2- छान्दोग्य उप0 3/14/1
3- वही—शांकर भाष्य
4- वेदान्त सार 53
5- सतत्वतोऽन्यथा प्रथा विकार इत्युदीरित:।
अतत्वतोऽन्यथा प्रथा विवर्त इत्युदाहृत:।।
वेदान्तसार 138
6- छा0 उप0 6/2/1
7- वही 6/2/3
8- तैत्तिरीय उपनिषद् ब्रह्मानन्द वल्ली अनु-1
9- छा0 उप0 सां0 भा0 6/2/3
10- वेदान्त परिभाषा पृ0 250
11- वही, पृ0 257
12- ...पृथिव्या अप्सु, अपां तेजसि, तेजसो वायौ, वायोराकाशे, आकाशस्य जीवाहंकारे, तस्य हिरण्यगभी हङ्कारे, तस्य च अविद्यायाम्... वे0 परि0 पृ0 260-61
13- छा0 उप0 6/8/6
14- वही 6/3/2
15- वही 6/1/4
16- तै0 उप0 भृगुवल्ली अनु-1
17- छा0 उप0 8/8/4
18- वही 6/8/7
19- वेदान्तसार 117
20- रामचरितमानस अयो0 126 दोहा।